THE ECONOMIC TIMES

Date: 28-10-25

Raise the Tide to Lift All-of-Economy

Maritime India must scale up domestically

ET Editorial

India Maritime Week 2025, which kicked off in Mumbai on Monday, is a good time to underline that the country's potential as a maritime economy can serve as a growth driver over the next decades. Fortunately, policy has become proactive and India's maritime advantages will become apparent to private capital. The country is located in the centre of the Indian Ocean, and is a junction for sea trade lanes between Europe and Asia. It has a sizeable exclusive economic maritime zone that can be prospected for resources. Fishing, a significant contributor to exports, is underexploited. An extensive internal waterways network feeds the country's extensive coastline. The domestic merchant fleet needs to acquire scale to keep pace with economic growth. Capacity must be created to build ships to service rising trade.

Development of the marine economy is typically influenced by an economy's export orientation. In the case of India, there is an added impetus to build marine infrastructure because of its dependence on energy imports, most of which come by sea. India plans to become a manufacturing base for the world market. This requires efficient port and internal logistics infrastructure. Industrialisation of the economy is concentrated in its coastal states, which will seek to improve their competitiveness through access to global supply chains. Again, peninsular India has an advantage in RE that can lower the fossil fuel intensity of rapid economic growth.

But India has a lot of catching up to do. Principally, this is about building its transport shipping fleet. At the moment, it's dependent on foreign shipbuilders that are inundated with orders. Domestic capacity is soaked up by the navy. Port infrastructure is another area of focus for the government that is trying to lower logistics costs economy wide. GoI is also trying to swing investment decisions by global manufacturing companies seeking a 'China Plus One' strategy. Potential in the maritime economy can be unlocked by addressing both supplyand demand-side constraints.

दैनिक भास्कर

Date: 28-10-25

एआई डेटा सेंटर्स पेयजल संकट को और बढ़ाएंगे

संपादकीय

एआई डेटा सेंटर्स और सेमी-कंडक्टर इकाइयों में असाधारण मात्रा में बिजली और पानी चाहिए। डेटा प्रोसेसिंग में बिजली की जबदस्त ज़रूरत होती है और एआई वीडियो बनाने की प्रक्रिया में भारी ऊष्मा पैदा होती है, जिसे पीने वाले पानी से ही ठंडा किया जा सकता है। बिजली के संकट से तो सरकार भिज्ञ है इसलिए पीएम ने अपनी एक अमेरिकी यात्रा के दौरान छोटे कैप्टिव न्यूक्लियर प्लांट्स के लिए समझौता किया और देश में निजी सेक्टर्स को अनुमति दी। लेकिन जिस देश में पीने के पानी के लिए संघर्ष होता हो, वहां पानी की खपत तीन गुनी होने लगे तो क्या वह जन आक्रोश को जन्म नहीं देगा ? गूगल ने अगले पांच साल में 16 अरब डॉलर निवेश के साथ आंध्र प्रदेश में एआई डेटा सेंटर बनाने की घोषणा की है। इस राज्य में पहले ही जलस्तर काफी नीचे चला गया है। अन्य दक्षिण भारत राज्यों में भी यही स्थिति है। अमेरिका में दुनिया के एआई डेटा सेंटर्स का 50% है, जबकि चीन में 10%, लेकिन अमेरिका के कई शहरों में इन केंद्रों में पेयजल के दोहन से लोगों को पानी नहीं मिल रहा है और प्रदर्शन होने लगे हैं। भारत में ऐसे डेटा सेंटर्स अलगे दो वर्षों में करीब दूने हो जाएंगे और पानी की जरूरत भी इसी अनुपात में बढ़ेगी। जबकि देश की 60 करोड़ आबादी जलसंकट झेल रही है। यहां दुनिया की 18% आबादी है, फिर भी केवल 4% ताजे पानी का भंडार है।

दैनिक जागरण

Date: 28-10-25

एसआईआर का दूसरा दौर

संपादकीय

अंततः चुनाव आयोग ने देश भर में मतदाता सूचियों के पुनरीक्षण यानी एसआईआर की प्रक्रिया शुरू कर दी। पहले चरण में बिहार में यह काम किया गया था। दूसरे चरण के लिए जिन 12 राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों का चयन किया गया है, उनमें से कई में अगले एक वर्ष में चुनाव होने हैं।

अच्छा होता कि यह काम एक निश्चित अंतराल में होता रहता। इसके पहले एसआईआर करीब दो दशक पहले किया गया था। कम से कम अब तो यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि एसआईआर में इतना अंतराल न आने पाए, क्योंकि अब लाखों लोग नौकरी-पेशे के चलते अन्यत्र चले जाते हैं। इनमें से अधिकांश वहीं बस जाते हैं।

इसके अतिरिक्त यह देखने में आता है कि मृतकों के नाम तो मतदाता सूची में बने रहते हैं, लेकिन नए लोगों के नाम उसमें दर्ज नहीं हो पाते। जितना जरूरी यह है कि एक भी अपात्र व्यक्ति मतदाता सूची में स्थान न पाने पाए, उतना ही यह भी कि पात्र व्यक्ति मतदान से वंचित न होने पाए।

मतदाता सूचियों को दुरुस्त करना चुनाव आयोग का संवैधानिक अधिकार ही नहीं, स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव की अनिवार्य आवश्यकता भी है। विडंबना यह है कि कुछ दलों को इस आवश्यकता की पूर्ति किया जाना रास नहीं आ रहा है।

उन्होंने बिहार में एसआईआर को लेकर आसमान सिर पर उठाया और वोट चोरी के जुमले के सहारे सड़कों पर उतरने के साथ ही सुप्रीम कोर्ट का दरवाजा भी खटखटाया। यदि उनकी दाल न सुप्रीम कोर्ट के समक्ष गली और न ही बिहार की जनता के बीच तो इसीलिए कि वे कोरा दुष्प्रचार कर रहे थे।

यदि चुनाव का सामना कर रहे बिहार में वोट चोरी का जुमला सुनाई नहीं दे रहा है तो इसी कारण कि यहां की जनता ने यह समझा कि चुनाव आयोग ने जो किया, वह समय की मांग थी। इसे ही एसआईआर की प्रक्रिया से दो-चार होने जा रहे राज्यों की जनता को भी समझना होगा और इनमें भी पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु के लोगों को विशेष रूप से।

इन राज्यों के मुख्यमंत्रियों ने संकीर्ण राजनीतिक कारणों से एसआईआर के खिलाफ विरोध का झंडा बुलंद कर रखा है और वह भी तब, जब सुप्रीम कोर्ट ने इस प्रक्रिया को उचित पाया है। क्या यह विचित्र नहीं कि विपक्षी दल मतदाता सूचियों में गड़बड़ियों की शिकायत भी करते हैं और उनके पुनरीक्षण का विरोध भी?

हालांकि उनके दुष्प्रचार की पोल खुल चुकी है, फिर भी चुनाव आयोग को इसके लिए तैयार रहना होगा कि विपक्ष शासित राज्य एसआईआर की प्रक्रिया का विरोध कर सकते हैं। उसे इसके प्रति सतर्क रहना होगा कि मतदाता सूचियों को ठीक करने की प्रक्रिया में किसी तरह की गलती न होने पाए, क्योंकि विपक्षी दल छोटी-छोटी बातों को तूल देकर इस संवैधानिक प्रक्रिया को श्रीहीन करने की चेष्टा कर सकते हैं।

Date: 28-10-25

कमजोर पड़ते लोकतांत्रिक मूल्य

जगमोहन सिंह राजपूत, (लेखक एनसीईआरटी के पूर्व निदेशक हैं)

इस समय वे युवा चर्चा में हैं, जो कार्यकारी जीवन में प्रवेश कर चुके हैं या कर रहे हैं। इनमें मिलेनियल्स और जेनरेशन-जी जैसे वर्ग शामिल हैं। इन्होंने लोकतंत्र की परिभाषा विश्वविद्यालयों में सीखी है और उसके सिद्धांत तथा मूल्यों को पुस्तकों में पढ़ा है। ये सैद्धांतिक और व्यावहारिक लोकतंत्र में जो अंतर है, उसे देख सकते हैं, अंतर का विश्लेषण कर समाधान के विकल्प सोच सकते हैं। जो कुछ इस पीढ़ी ने देखा, सुना और समझा है, जो कुछ विद्वानों से सीखा या पुस्तकों में पढ़ा है, उसमें और लोकतंत्र के व्यावहारिक स्वरूप में विशाल अंतर इन्हें असमंजस में डाल रहा है।

इससे व्यग्रता जन्म लेती है, बढ़ती है और अनेक अवसरों पर वह उग्रता में परिवर्तित हो जाती है। श्रीलंका, बांग्लादेश और नेपाल की घटनाओं को इस संदर्भ में ही विश्लेषित किया जा रहा है। एक दूसरा वर्ग भी उन लोगों का है, जिनका जन्म परतंत्र भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की प्रजा के रूप में हुआ। वे स्वतंत्र भारत के नागरिक बने। इन्होंने देश के

विभाजन तथा आबादी को 40 करोड़ से 140 करोड़ होते देखा एवं उससे जुड़े अन्य परिवर्तनों से भी भलीभांति प्रभावित हुए हैं। ये वे लोग हैं, जिन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन की खुशबू से परिचय पाया।

इनकी अपेक्षाएं और आशाएं उस वातावरण में बढ़ रही थीं, जिसमें ऐसे अनेक व्यक्ति उपस्थित थे, जिन्होंने देश की आजादी के लिए अपना सब कुछ न्योछावर कर दिया। उस पीढ़ी ने लोकतंत्र के जिस सैद्धांतिक लोकतंत्र से परिचय पाया था, उसी के अनुरूप सत्ता में पहुंचे लोगों को जीवन जीते देखा और आज उसको लगातार विरूपित होते भी देख रहे हैं। इनके समक्ष ज्यादा विचलित करने वाली स्थिति है या उन युवाओं के समक्ष, जिन्हें अपने भविष्य को जीना है, अपने लक्ष्य निर्धारित कर उन्हें प्राप्त करने के प्रयासों को प्रारंभ करना है।

20वीं सदी के उत्तरार्ध में जो देश प्रजातंत्र को अपना रहे थे, उनमें भारत में ही यह सबसे अधिक सफलतापूर्वक स्थापित हो सका है। भारत में प्राचीन परंपराओं और 'परहित' की सार्वभौमिक समझ के कारण ही लोकतंत्र व्यवस्थित ढंग से लागू हुआ और चलता रहा है, पर यह अत्यंत आश्चर्य का विषय है कि त्याग, तपस्या और जनसेवा के जो मूल्य गांधीजी और उनकी पीढ़ी के लोग सिखा गए, वे सब कहां खो गए। जैसे-जैसे चयनित प्रतिनिधियों को सत्ता में मिलने वाले अधिकार एवं सुविधाएं मिलीं, वे अपने निर्वाचकों को भूल गए और संपत्ति के संग्रहण में खो गए। पुलिस, कचहरी और स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता सामान्य व्यक्ति के लिए अत्यंत कष्टकर है।

हालांकि अंतिम पंक्ति में खड़े व्यक्ति के लिए पिछले कुछ वर्षों में सार्थक प्रयास किए गए हैं, ताकि उसका जीवन सुधरे और वह अपना जीवन सम्मान और मानवीय गरिमा के साथ जी सके, परंतु समस्या यह है कि यदि ऊपर से नीचे तक अधिकांश सरकारी कर्मचारी नैतिकता के मूल्यों से विलग हो चुके हों तो अच्छे से अच्छा प्रयास कागजों पर जो दर्शाता है, वह व्यावहारिकता में लगभग शून्य हो जाता है।

आखिर भारत जैसे देश में जहां मानव मूल दर्शन में 'सर्वभूतहिते रतः' (सभी प्राणियों के हित में लगे रहना) को अंगीकार किया गया हो, वहां नैतिकता बड़े स्तर पर तिरोहित होने के स्तर तक कैसे पहुंच गई है? क्या लोकतंत्र का अर्थ चुनाव जीतकर सत्ता में कोई पद पाना, अगले पांच वर्ष तक हर प्रकार से सपत्ति संग्रह करना और जनसेवा के स्थान पर अगला चुनाव जीतना मात्र रह गया है? चयनित प्रतिनिधियों ने अपने लिए सुविधाएं लगातार बढ़ाई हैं।

संभवतः अधिकांश यह भूल गए हैं कि इस देश में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी राजेंद्र प्रसाद, लालबहादुर शास्त्री, कर्पूरी ठाकुर, गुलजारी लाल नंदा, एपीजे अब्दुल कलाम जैसे अनेकानेक लोग हुए हैं, जो सत्ता में रहे, लेकिन केवल जनसेवा को ही जीवन लक्ष्य बनाया। अपना या अपने परिवार का सुख, संपत्ति और स्वजनों को आगे बढ़ाने का कोई प्रयास नहीं किया। पिछले दस वर्षों में भारत की वैश्विक साख सम्मानजनक स्तर पर पहुंच चुकी है, लेकिन नैतिकता और मूल्यों के ह्रास की प्रक्रिया रुकी नहीं है। भ्रष्ट नेताओं और नौकरशाहों के मामले थमने का नाम नहीं ले रहे हैं।

1962 और 1965 के युद्ध के समय सभी पंथों, जातियों, वर्गों के लोग हर प्रकार के अंतर और भेद को भुलाकर सरकार के साथ खड़े हुए। पक्ष-विपक्ष या राजनीतिक दल जैसा कोई भेदभाव नहीं था। 1971 में भी इंदिरा गांधी को विजय का श्रेय देने में पक्ष-विपक्ष पूरी तरह एक हो गया था। आज स्थिति यह है कि देश की सेना जो जानकारी देती है, उस पर विपक्ष प्रश्न पूछता है।

अमेरिकी राष्ट्रपति जब अपनी सनक में कहते हैं कि भारत की अर्थव्यवस्था मर चुकी है तो उसे विपक्ष के नेता तोता-रटंत करते हुए बिना अपने मस्तिष्क का उपयोग किए दोहरा देते हैं। कुछ तो ऐसे भी हैं, जो लगातार विदेश जाकर भारत की अस्वीकार्य आलोचना करते हैं, पाकिस्तान से देश के चयनित प्रधानमंत्री को हटाने में मदद मांगते हैं। देश के बुद्धिजीवियों, विद्वानों तथा राष्ट्र-समर्पित युवाओं को गहन विचार-विमर्श कर लोकतंत्र के मूलभूत सिद्धांतों को पुनर्स्थापित करने की पहल करनी चाहिए।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 28-10-25

वैज्ञानिक प्रतिभाओं को हासिल करने का मौका

अजय शाह और प्रल्हाद बुर्ली, (लेखक एक्सकेडीआर फोरम में क्रमश: शोधकर्ता और स्वतंत्र शोधकर्ता हैं)

विभिन्न समाजों को नवाचारी व्यवस्थाएं बनाने की आवश्यकता होती है जिनके जरिये युवा शोधार्थियों को संगठित किया जा सके, उन्हें वित्तीय मदद दी जा सके और उन्हें सही दिशा में बढ़ावा दिया जा सके। ऐसा ही एक मूल्यवान ढांचा है टेक्नॉलजी रेडिनेस लेवल यानी टीआरएल। नैशनल एरोनॉटिक्स ऐंड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन यानी नासा की इस अवधारणा में किसी तकनीक की अवधारणा से लेकर उसके क्रियान्वयन तक को श्रेणीबद्ध किया गया है। टीआरएल1 बुनियादी सिद्धांत वाला प्रतिष्ठान है। टीआरएल2 तकनीकी अवधारणा का निर्माण है।

टीआरएल3 अवधारणा का प्रायोगिक सबूत है। शुरुआती चरण के ये टीआरएल 1 से टीआरएल 3 तक मिलकर बुनियादी और प्रारंभिक चरण के अनुप्रयुक्त शोध का गठन करते हैं। मझोले चरण में यानी टीआरएल 4-6 में प्रयोगशाला में वैधता देने और उसके बाद प्रासंगिक माहौल में एक उपयुक्त नमूना बनाने की प्रक्रिया की जाती है। यह शोध एवं विकास की बुनियाद है। टीआरएल 7-9 तक वास्तविक प्रणाली होती है जहां वाणिज्यिक उत्पादन शुरू किया जाता है।

यह वर्गीकरण केवल अकादमिक नहीं है। अलग-अलग टीआरएल के लिए अलग- अलग तरह के संगठनों और फंडिंग व्यवस्था की आवश्यकता होती है। टीआरएल 7 और उससे ऊपर की तकनीकों के लिए बाजार की राह एकदम स्पष्ट है। इस अंतिम चरण के विकास और उसे व्यावसायिक बनाने के लिए निजी पूंजी उपलब्ध होती है। जोखिम बहुत कम होता है। क्या हासिल होगा यह स्पष्ट होता है और समयसीमा अपेक्षाकृत छोटी होती है। दिक्कत शुरुआती चरणों में होती है।

टीआरएल 1-6 के लिए निजी फंडिंग बहुत कम मिलती है। यहां सरकारी फंडिंग की सख्त जरूरत है। पिछले 70 साल से अधिक समय से अमेरिकी सरकार दुनिया की इकलौती ऐसी सरकार है जो टीआरएल 1-6 के स्तर के शोध को मदद

पहुंचाती है। उसने अमेरिकी विश्वविद्यालयों और प्रयोगशालाओं को फंडिंग की है जिससे ज्ञान को आगे बढ़ाने में मदद मिली है। इससे दुनिया को बहुत बेहतर उत्पाद मिले।

जीपीएस से लेकर एमआरएनए टीके तक तमाम नई तकनीक अमेरिकी सरकार के शोध एवं विकास व्यय से निकली हैं। वर्तमान में भारत हर साल लगभग 350 अरब डॉलर का सेवा निर्यात करता है, जिसका श्रेय अमेरिकी सरकार के अनुसंधान एवं विकास खर्च को जाता है जिसने सेंट्रल प्रोसेसिंग यूनिट (सीपीयू), यूनिक्स और इंटरनेट जैसी क्रांतिकारी तकनीकों को जन्म दिया। वर्ष2022 में अमेरिका की संघीय सरकार ने बुनियादी अनुसंधान के लिए 45 अरब डॉलर और अनुप्रयुक्त अनुसंधान के लिए 48 अरब डॉलर से अधिक का निवेश किया था। अब यह शोध तंत्र संगठित रूप से कमजोर किया जा रहा है। डोनाल्ड ट्रंप प्रशासन ने टीआरएल 1-6 स्तर की फंडिंग को निशाना बनाते हुए कई कदम उठाए हैं जो लोकप्रियता के नाम पर अभिजात्य संस्कृति पर हमले का हिस्सा हैं।

अमेरिका के प्रस्तावित 2026 बजट में बुनियादी अनुसंधान में 34 फीसदी और कुल अनुसंधान में 22 फीसदी की कटौती का उल्लेख है। इसमें नैशनल साइंस फाउंडेशन यानी एनएसएफ के बजट में 55.7 फीसदी की कटौती करके उसे 8.8 अरब डॉलर से घटाकर 3.9 अरब डॉलर तथा नैशनल इंस्टीट्यूट ऑफ हेल्थ (एनआईएच) के बजट में 39.9 फीसदी की कटौती कर उसे 46 अरब डॉलर से 27.9 अरब डॉलर करने की बात शामिल है। यही दो एजेंसियां हैं जो टीआरएल 1-2 स्तर के शोध के लिए प्राथमिक तौर पर जिम्मेदार हैं। टीआरएल 3-6 के स्तर पर भी हालात बेहतर नहीं हैं। ऊर्जा विभाग के विज्ञान कार्यालय के बजट में 14 फीसदी कमी की गई है। नासा के विज्ञान शोध विभाग के बजट में 46.6 फीसदी की कमी की गई और इसे 7.3 अरब डॉलर से घटाकर 3.9 अरब डॉलर कर दिया गया।

यह केवल बजट कटौती नहीं है। यह काम करने वाले संगठनों को बाधित करने का प्रयास है। शोध प्रयोगशाला किसी नल की तरह नहीं होती जिसे चालू-बंद किया जा सके। यह एक जटिल संगठन होता है जो कई टीम के सहारे काम करता है। जब फंडिंग में कमी की जाती है तो ये टीमें बिखर जाती हैं। स्नातकोत्तर छात्र, विशेष रूप से वे जो अपने पीएचडी के अंतिम चरण में होते हैं, विज्ञान क्षेत्र को छोड़ देते हैं।

विशेषीकृत अनुसंधान सुविधाएं बंद कर दी जाती हैं और धीरे-धीरे नष्ट होने लगती हैं। दीर्घकालिक शोध परियोजनाएं बीच में ही रोक दी जाती हैं, जिससे वर्षों का शोध निष्फल हो जाता है और मूल्यवान डेटा अचानक छोड़ दिया जाता है। इसमें हिस्टेरेसिस प्रभाव होता है यानी, अगर ट्रंप के बाद फंडिंग पूरी तरह बहाल भी कर दी जाए, तो भी ज्ञान और संगठनात्मक पूंजी पहले ही खो चुकी होती है। इन क्षमताओं को फिर से स्थापित करने में एक दशक या उससे अधिक समय लग सकता है। हम दुनिया के सर्वश्रेष्ठ नवाचार तंत्र के तेज और सुनियोजित विनाश को देख रहे हैं।

अमेरिकी सरकार की वैश्विक बुनियादी शोध में अत्यधिक भूमिका को देखते हुए, इन कटौतियों का दुनियाभर में ज्ञान उत्पादन पर नकारात्मक असर पड़ेगा। टीआरएल 1-6 स्तर की फंडिंग में जो अंतर पैदा होगा, उसे आसानी से भरा नहीं जा सकता। हालांकि निजी क्षेत्र से अपेक्षा की जाती है कि वह स्वच्छ ऊर्जा जैसे उच्च मांग वाले क्षेत्रों में निवेश बढ़ाएगाा विशेष रूप से अपने डेटा सेंटर्स के लिए। बहरहाल, यह उस प्रारंभिक टीआरएल कार्य की भरपाई नहीं कर सकता जिसे सरकार फंड करती है।

टीआरएल 7 स्तर पर मौजूद निजी पूंजी उन विचारों को व्यावसायिक रूप देने के लिए होती है जो टीआरएल 1-6 की शोध प्रक्रिया से निकलते हैं। परंतु जब ऐसे विचार ही कम होंगे, तो उन्हें व्यावसायिक रूप देने के अवसर भी घटेंगे।

इसका असर आने वाले दशकों तक उत्पादकता वृद्धि और वैश्विक जीडीपी वृद्धि में गिरावट के रूप में दिखाई देगा। हमने ऐसा पहले भी होते हुए देखा है। 1920 के दशक में जर्मनी विज्ञान के क्षेत्र में विशेष रूप से भौतिकी और रसायन में निर्विवाद वैश्विक नेता था। लेकिन 1933 में सत्ता में आई नाजी सरकार एक लोकप्रिय सरकार थी, जिसने बहुसांस्कृतिक अभिजात वर्ग के खिलाफ जनाक्रोश को भुनाया।

अनुमान है कि जर्मनी के लगभग 25 फीसदी भौतिक विज्ञानी, जिनमें अल्बर्ट आइंस्टीन, मैक्स बॉर्न और लियो सिलार्ड जैसे 11 नोबेल पुरस्कार विजेता (पूर्व या भविष्य के) शामिल थे, जर्मनी छोड़कर चले गए। गॉटिंगेन विश्वविद्यालय जैसे विश्व के श्रेष्ठ अनुसंधान संस्थान नष्ट हो गए और इसमें सिर्फ एक साल लगा। 1934 में महान गणितज्ञ डेविड हिल्बर्ट ने नाजी शिक्षा मंत्री से कहा, 'गॉटिंगेन में गणित? अब वहां ऐसा कुछ नहीं बचा है।' यह बताता है कि ज्ञान और नवाचार की नींव को कमजोर करना कितना नुकसानदायक हो सकता है।

उस दौर में अमेरिका शोधकर्ताओं के लिए उम्मीद का केंद्र बनकर उभरा और वे वहां जाकर काम कर सके। दुनिया भर की सरकारों और परोपकारियों को इन हालात को समझना चाहिए। उन्हें टीआरएल 1-6 के बीच फंडिंग की कमी को दूर करने के लिए आगे आना चाहिए। उन्हें अमेरिका छोड़ने वाले लोगों को वीजा, नौकरी और वित्तीय मदद देने के लिए तैयार रहना होगा, चाहे वे किसी भी देश के हों। भारत में एजेंडा होना चाहिए: (अ) अनुसंधान राष्ट्रीय शोध फाउंडेशन (अनुसंधान एनआरएफ) का निर्माण, ताकि भारत में सार्वजनिक या निजी क्षेत्र की शोध एवं विकास संस्थाओं को प्रभावी रूप से वित्तपोषित किया जा सके। (बी) टीआरएल 1-6 स्तर के अनुसंधान के लिए सार्वजनिक संसाधनों का आवंटन। (सी) वीजा नियमों में संशोधन, ताकि शोध प्रतिभाओं लिए भारत में प्रवास आसान हो सके।

1989 में जब सोवियत संघ का पतन हुआ तब भारत के पास ऐसा ही अवसर था कि वह पूर्वी यूरोप के शोधकर्ताओं को अपने साथ कर सके। हमने वह अवसर गंवा दिया क्योंकि भारत खुद कमजोर था और मुश्किलों से घिरा था। इस बार हमें बेहतर प्रदर्शन करना चाहिए।

जनसत्ता

Date: 28-10-25

पारदर्शिता का तकाजा

संपादकीय

निर्वाचन आयोग की ओर से हाल ही में बिहार में मतदाता सूची के गहन पुनरीक्षण यानी एसआईआर के बाद अब दूसरे चरण के तहत बारह राज्यों में यही प्रक्रिया शुरू करने की घोषणा की अपनी अहमियत है। दरअसल, बिहार में यह सवाल उठाया गया था कि जब चुनाव के लिए बहुत कम वक्त बचा था, तब आयोग ने अचानक एसआइआर की शुरुआत क्यों कर दी और ऐसा केवल बिहार में क्यों किया गया। तब यह भी कहा गया कि जिन राज्यों में विधानसभा चुनाव होने में पर्याप्त वक्त है, अगर वहां पहले एसआइआर कराया जाए तो बेहतर हो। मगर निर्वाचन आयोग शायद बिहार विधानसभा

के लिए इसी चुनाव में मतदाता सूची को 'शुद्ध' करने की इच्छा रखता था, इसलिए काफी सवाल उठने के बावजूद आखिर एसआइआर को अंजाम दिया गया। अब अंडमान और निकोबार, छत्तीसगढ़, गोवा, गुजरात, केरल, लक्षद्वीप, मध्य प्रदेश, पुदुचेरी, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु में एसआइआर होगा, जिसके बाद आयोग का मानना है कि इसके जरिए संबंधित राज्यों की मतदाता सूची को त्रुटिहीन बनाया जा सकेगा।

ऐसी शिकायतें आती रही हैं कि चुनाव में कुछ लोगों ने फर्जी तरीके से या फिर किसी का नाम एक से ज्यादा जगहों पर दर्ज था। इस तरह के कई अन्य मामलों के आधार पर मतदाता सूची में अपात्र लोगों के नाम हटाए जाने को लेकर आवाज उठती रही है। मगर बिहार में एसआइआर के क्रम में जिस तरह लाखों लोगों के नाम मतदाता सूची से हटाए गए, उसे लेकर एक बड़ा विवाद खड़ा हो गया था। कई राजनीतिक दलों ने आरोप लगाया कि एसआइआर के बहाने बड़ी संख्या में वैसे मतदाताओं के नाम भी सूची से हटा दिए गए, जो पात्र थे। आयोग की इस दलील से किसी को भी इनकार नहीं होगा कि किसी भी चुनाव में केवल वैध और पात्र मतदाताओं को मतदान करने का अधिकार हो। जिन लोगों का निधन हो गया है, जिनका नाम एक से ज्यादा जगहों पर मौजूद है या फिर जो स्थायी रूप से एक से दूसरे शहर में विस्थापित हो गए हैं, उनका नाम मतदाता सूची से हटा दिया जाए। मगर यह सवाल बना रहेगा कि मतदाता सूची में से किसी भी ऐसे व्यक्ति का नाम क्यों हटे, जो वैधता की कसौटी पर अपनी पूरी पात्रता रखते हैं।

अब जिन राज्यों में एसआइआर की घोषणा हुई है, उसमें खबरों के मुताबिक, कोई कागज दिखाने की जरूरत नहीं होगी। मुख्य रूप से यह एक बड़ा बिंदु था, जिस पर बिहार में हुए एसआइआर के दौरान काफी सवाल उठाए गए थे। दरअसल, बिहार में एसआइआर के तहत मतदाता सूची में नाम कायम रखने के लिए आयोग ने कुछ दस्तावेज जमा करना अनिवार्य बना दिया था, जिसमें आधार को मान्य नहीं बताया गया। हालांकि इस मसले पर सर्वोच्च न्यायालय के दखल के बाद निर्वाचन आयोग को एसआईआर की प्रक्रिया में दस्तावेज और प्रक्रिया संबंधी शर्तों में बदलाव करने पड़े। इस सबके मद्देनजर आगे यह ध्यान रखने की जरूरत होगी कि एसआइआर की समूची प्रक्रिया में पूरी पारदर्शिता रखी जाए। इस संबंध में बिहार में हुए एसआइआर के संदर्भ में सुप्रीम कोर्ट में हुई सुनवाई में जो सवाल उठे और उस अदालत की ओर से जो सुझाव या निर्देश सामने आए, उसे देखते हुए निर्वाचन आयोग अब एक ऐसे प्रारूप में एसआइआर की प्रक्रिया को संपन्न करा सकता है, जो पूरी तरह विवादरहित हो और जिससे किसी भी राजनीतिक दल को आपत्ति न हो।

Date: 28-10-25

भारत की नई अफगान नीति

ब्रह्मदीप अलूने

कूटनीति एक गतिशील और बहुआयामी प्रक्रिया है। तालिबान शासित अफगानिस्तान में भारत के तकनीकी मिशन को दूतावास में बदलने के निर्णय से यह स्पष्ट है कि बदलते वैश्विक परिदृश्य में कूटनीति अपेक्षाकृत ज्यादा व्यावहारिक और यथार्थवादी हो गई है तथा भारत ने भी इसे स्वीकार कर लिया है। अफगानिस्तान दक्षिण एशिया, मध्य एशिया और पश्चिमी एशिया को जोड़ने वाला एक महत्त्वपूर्ण सेतु है। इसी कारण क्षेत्रीय संपर्क, व्यापार मार्गों और सामरिक संतुलन में

इसकी विशेष भूमिका है। यही वजह है कि भारत पहले की तरह अफगानिस्तान तक अपनी पहुंच सुनिश्चित करना चाहता है।

वर्ष 2021 में अफगानिस्तान में जब तालिबान सत्ता में आया था तो इसे पाकिस्तान के लिए बेहतर स्थिति माना गया था। मगर भारत ने कूटनीतिक दूरदर्शिता दिखाते हुए तालिबान से सीमित संवाद रखा और पहले की तरह अफगानिस्तान को मानवीय सहायता देना जारी रखा। भारत और तालिबान के बीच बढ़ते राजनयिक संबंधों तथा अफगानिस्तान और पाकिस्तान की सेना के बीच डूरंड रेखा पर भीषण संघर्ष से उपजे हालात को भारत के लिए रणनीतिक बढ़त और पाकिस्तान के लिए एक बड़ी चुनौती की तरह देखा जा रहा है।

भारत और अफगानिस्तान के आपसी संबंध ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और रणनीतिक रूप से काफी घनिष्ठ रहे हैं। अफगानिस्तान की राजनीति में भारत की भूमिका शांति, पुनर्निर्माण और स्थायित्व को केंद्र में रखकर रही है। भारत ने अफगानिस्तान में कई विकास परियोजनाएं चलाई हैं, जिनमें संसद भवन, सलमा बांध और जरांज-दिलाराम उच्चमार्ग प्रमुख हैं। ये परियोजनाएं अफगान जनता के बीच भारत की सकारात्मक छवि बनाती हैं। हालांकि भारत का तालिबान के साथ संबंध कभी भी सीधे और स्पष्ट नहीं रहा, लेकिन वर्तमान में यह संबंध राजनयिक संतुलन, सुरक्षा चिंताओं और रणनीतिक दूरदर्शिता पर आधारित है।

यह माना जाता है कि अफगानिस्तान में मजबूत दिखने वाला देश मध्य एशिया से दक्षिण एशिया तक के व्यापार मार्गों पर प्रभाव डाल सकता है। यह क्षेत्र भारत-मध्य एशिया संपर्क योजनाओं के लिए भी अहम है। अफगानिस्तान की स्थिरता भारत के राष्ट्रीय सुरक्षा हितों से जुड़ी है। भारत को यह आशंका रही है कि अगर अफगानिस्तान अस्थिर रहता है तो पाकिस्तान-प्रायोजित आतंकी संगठन वहां से भारत विरोधी गतिविधियां संचालित कर सकते हैं। तालिबान से बेहतर संबंध कायम होने से भारत की सुरक्षा चिंताएं कम हो सकती है।

भारत के लिए अफगानिस्तान एक रणनीतिक साझेदार, सुरक्षा और संपर्क मार्ग, इन तीनों भूमिकाओं में महत्त्वपूर्ण है। दक्षिण और पूर्व में अफगानिस्तान की सीमा पाकिस्तान से लगती है। पश्चिम में ईरान से तथा इसकी उत्तरी सीमा मध्य एशियाई देशों तुर्कमेनिस्तान, उज्बेकिस्तान और ताजिकिस्तान से लगती है। अफगानिस्तान सुदूर उत्तर-पूर्व में चीन से सीमा साझा करता है। तुर्कमेनिस्तान और ईरान, दोनों की सीमाएं अफगानिस्तान से लगती हैं और ये अजरबैजान की सीमा के भी करीब हैं।

भारत की सामरिक सुरक्षा के लिए पाकिस्तान, चीन और अजरबैजान की ओर से चुनौतियां बढ़ी हैं। ऐसे में इन देशों पर रणनीतिक बढ़त लेने के लिए भारत का अफगानिस्तान से बेहतर संबंध और प्रभावशाली भूमिका में होना आवश्यक है। अफगानिस्तान के एक और पड़ोसी देश ताजिकिस्तान तथा भारत के बीच राजनयिक, आर्थिक और रणनीतिक संबंध हैं। इसी के परिणामस्वरूप भारत ने फरखोर में अपना पहला विदेशी सैन्य अड्डा स्थापित किया है। यह पाकिस्तान और चीन के करीब है, इसलिए इसे सामरिक रूप से महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

भारत के लिए ताजिकिस्तान की रणनीतिक स्थिति का बड़ा महत्त्व है। यह भारत को अफगानिस्तान और मध्य एशिया में निगरानी, सुरक्षा साझेदारी और सैन्य उपस्थिति का अवसर देता है। ताजिकिस्तान मध्य एशिया के उन गिने-चुने देशों में है, जो भारत के साथ लगातार घनिष्ठ सैन्य और राजनयिक संबंध बनाए हुए है। भारत के लिए यह देश न केवल ऊर्जा

और व्यापार का प्रवेशद्वार बन सकता है, बल्कि यह चीन और पाकिस्तान के बढ़ते प्रभाव को संतुलित करने में भी अहम भूमिका निभा सकता है।

भारत द्वारा निर्मित जरांज-दिलाराम उच्चमार्ग अफगानिस्तान को ईरान के चाबहार बंदरगाह से जोड़ता है, जो भारत को मध्य एशिया तक पहुंचने का वैकल्पिक मार्ग प्रदान करता है। एशिया महाद्वीप की दो महाशक्तियों भारत और चीन की सामरिक प्रतिस्पर्धा समुद्री परिवहन एवं पारगमन की रणनीति पर देखी जा सकती है। चीन की 'पर्ल आफ स्प्रिंग' के जाल को भेदने के तौर पर भारत ने चाबहार बंदरगाह का निर्माण कर एक सामरिक कदम उठाया था। अभी यह अमेरिकी प्रतिबंधों से प्रभावित है, लेकिन परिस्थितियों के बदलते ही चाबहार भारत की सामरिक और आर्थिक क्षमताओं का केंद्र बन सकता है।

इस बंदरगाह के पूरी तरह प्रभाव में आते ही अरब सागर से उठती समुद्री हवाओं को ग्वादर के जरिए भारत भेजकर तूफान पैदा करने की पाक-चीन की कोशिशें पस्त पड़ सकती है। चाबहार पत्तन पाकिस्तान-चीन के महत्वाकांक्षी ग्वादर बंदरगाह से महज बहत्तर किलोमीटर की दूरी पर है। चाबहार के जरिए भारत, अफगानिस्तान और बलूचिस्तान तक सीधी पहुंच बनाने में कामयाब हो रहा है। इसके माध्यम से भारत के लिए पाकिस्तान की सीमा में प्रवेश किए बिना समुद्री मार्ग से अफगानिस्तान पहुंचने का रास्ता प्रशस्त हो जाएगा। चाबहार से भारत की पहुंच अंतरराष्ट्रीय उत्तर-दक्षिण व्यापार गलियारा के रास्ते यूरोप तक हो सकती है।

भारत के लिए यह केवल एक व्यापार मार्ग नहीं, बल्कि रणनीतिक, आर्थिक और भू-राजनीतिक अवसर है। इससे भारत की ऊर्जा, व्यापार और वैश्विक संपर्क की शक्ति में वृद्धि होगी और वह चीन के प्रभाव को संतुलित करने में सफल होगा। यह गलियारा भविष्य में यूरोप-एशिया के बीच एक वैकल्पिक व्यापार धुरी बन सकता है। अब तक भारत के लिए यूरोप, मध्य एशिया या पश्चिम एशिया से समुद्री व्यापार करना बेहद खर्चीला है। चाबहार बंदरगाह बनने से यूरोप तक पहुंचने का मार्ग वर्तमान के समुद्री मार्ग से करीब चालीस फीसद छोटा है और इस मार्ग से परिवहन की लागत में तीस फीसद तक की कमी आ सकती है। चाबहार पर समझौते से हिंद महासागर, अरब सागर और फारस की खाड़ी में शक्ति संतुलन भी स्थापित होगा, जो चीन के पक्ष में झुका दिख रहा था।

अफगानिस्तान का इतिहास संघर्षपूर्ण रहा है और यह पिछले कई दशकों से पाकिस्तान की नापाक साजिशों का शिकार रहा है। वर्ष 1990 के दशक में जब पहली बार तालिबान ने अफगानिस्तान में सत्ता हासिल की, तो पाकिस्तान उन चुनिंदा देशों में से एक था, जिन्होंने उसे मान्यता दी थी। हालांकि पिछले कुछ वर्षों में तालिबान ने पाकिस्तान का सैन्य संसाधन बनने से इनकार कर अफगानिस्तान के दूरगामी हितों को आगे बढ़ाने की नीति के तहत भारत से मजबूत संबंधों को प्राथमिकता देना शुरू किया है। वहीं, भारत ने अफगान शरणार्थियों, शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्रों में योगदान देकर वहां लोगों के बीच स्थायी संबंध बनाए हैं, जो दीर्घकालिक सहयोग और स्थिरता के लिए अनुकूल वातावरण निर्मित करते हैं।

भौगोलिक रूप से अफगानिस्तान की स्थिति चीन, पाकिस्तान और रूस जैसे देशों के बीच संतुलन को प्रभावित करती है। इसलिए वहां भारत की सक्रिय उपस्थिति प्रतिस्पर्धात्मक रूप से दूसरे देशों के प्रभाव को कम करेगी। बहरहाल, भारत ने व्यावहारिक कूटनीति को अपनाकर अफगानिस्तान से संवाद और मानवीय सहायता के रास्ते खुले रखे हैं, ताकि वह अपने रणनीतिक हितों की रक्षा कर सके और अफगान जनता को समर्थन भी दिया जा सके।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 28-10-25

देशव्यापी एसआईआर

संपादकीय

बारह राज्यों में मतदाता सूची विशेष गहन पुनरीक्षण (एसआईआर) की चुनाव आयोग की घोषणा एक स्वागत योग्य कदम है। सोमवार को एसआईआर के दूसरे चरण का एलान करते हुए मुख्य चुनाव आयुक्त ज्ञानेश कुमार ने देश को बताया कि इस महा अभियान में एक दर्जन सूबों के करीब 51 करोड़ मतदाताओं के नाम की जांच की जाएगी और सात लाख से अधिक बूथ स्तरीय एजेंट (बीएलए) इस काम को अंजाम देंगे। निस्संदेह, एक सफल लोकतंत्र की पहली पहचान यही है कि उसकी चुनाव प्रक्रिया में सभी हितधारकों का भरोसा हो और उसकी राजनीतिक पार्टियां जनादेश को शिरोधार्य करते हुए सुचारू रूप से सत्ता हस्तांतरित करती हों। भारतीय लोकतंत्र इसी आदर्श से संचालित रहा है। पहले आम चुनाव से लेकर आज तक सरकारों व निर्वाचन आयोग ने चुनाव सुधार के कई कदम उठाए हैं। इनमें इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (ईवीएम) के इस्तेमाल से लेकर आदर्श आचार संहिता लागू करने, उम्मीदवारों को अपने खिलाफ कायम आपराधिक मुकदमों की घोषणा करने के लिए बाध्य किए जाने और दो साल से अधिक कैद की सजा पाए लोगों के चुनाव लड़ने पर रोक जैसे कई उपाय शामिल हैं। यकीनन, इन सभी कदमों का कमोवेश असर हुआ है।

मगर मतदाता सूची के गहन निरीक्षण का काम काफी समय से नहीं हुआ था। पिछली बार सन् 2004 में देशव्यापी एसआईआर हुआ था। इसके कारण हमारी मतदाता सूची कई तरह की विसंगतियों का शिकार होती गई। इसमें नए मतदाताओं के नाम तो जुड़ते गए, मगर मृत लोगों के नाम ठीक से नहीं कट सके, बल्कि एक ही मतदाता के नाम कई जगह की सूची में दर्ज होते गए। बिहार में एसआईआर के बाद चुनाव आयोग ने सर्वोच्च न्यायालय में जो शपथ-पत्र दाखिल किया है, वह इन विसंगतियों की तस्दीक करता है। वहां करीब 47 लाख नाम अंतिम तौर पर हटाए गए हैं। उचित तो यही था कि चुनाव आयोग 2024 के आम चुनाव के बहुत पहले ही इस काम को अंजाम दे देता। मगर अब इस काम को जल्द से जल्द पूरा किया जाना चाहिए।

जन प्रतिनिधित्व कानून, 1950 की धारा 21 चुनाव आयोग को मतदाता सूची तैयार करने और उनको संशोधित करने का अधिकार देती है। यह उसका बुनियादी कर्तव्य भी है। मगर ऐसा करते हुए उसे देश के सभी राजनीतिक दलों को भरोसे में लेना चाहिए, क्योंकि वे इस पूरी प्रक्रिया के बेहद महत्वपूर्ण हितधारक हैं। दुर्योग से हालिया कुछ वर्षों में आयोग के रुख ने विवादों को ही अधिक जन्म दिया है। विपक्षी दलों के प्रतिनिधियों से मिलने में आनाकानी, मतदान के बाद कई-कई दिनों तक वोट प्रतिशत में इजाफा आसानी से लोगों के गले नहीं उतरता। तब तो और जब हम एक डिजिटल युग में जी रहे हैं। इस अविश्वास ने ही बिहार में एसआईआर की कवायद को इतने विवादों में घसीटा और अंततः सुप्रीम कोर्ट के हस्तक्षेप की नौबत आई। जाहिर है, इससे चुनाव आयोग की छवि को ही चोट पहुंची है। बहरहाल, राजनीतिक पार्टियों की भी यह महती जिम्मेदारी है कि वे सिर्फ दोषारोपण करने तक सीमित न रहें, बल्कि इस पूरी प्रक्रिया में अपनी

जिम्मेदारियां निभाएं। इसी तरह, नागरिक संगठनों के लिए भी यह सक्रिय होने का समय है। उनकी निगरानी बीएलए के काम को अधिक सरल व सटीक बना सकती है। कुल मिलाकर पूरे देश में एक साथ चुनाव कराने का सपना दिखाने वाले चुनाव आयोग के सामने अभी अपनी प्राथमिक जिम्मेदारी को ही निर्विवाद रूप से पूरा करने की चुनौती है।